

रामस्थानी साहित्य
कुछ प्रश्नचिह्नां

राजस्थानी-साहित्य-माला १

राजस्थानी साहित्य • कुछ प्रवृत्तियाँ

डा० नरेन्द्र मानावत

एम ए, पी-एच डी

हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर

भूमिका

डा० सत्येन्द्र

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्व विद्यालय जयपुर

— — —
रोशनलाल सण्ड सस
बोरडी का रास्ता, जयपुर

प्रकाशक :

रोशनसाल जैन एण्ड सन्स
बोरबी का रास्ता जयपुर

✱

मूल्य ६-००

१९६५

पुस्तक :

मातृभूमि प्रिन्टिंग प्रस,

अनुक्रम



मपनी बात

भूमिका : डॉ० सत्येन्द्र

१ राजस्थानी वष की विशिष्ट शैलियाँ	१
२ राजस्थानी वष साहित्य : एक पर्यायीक	२०
३ राजस्थानी शैलि साहित्य : वरप्यय और प्रवति	४४
४ और रसात्मक वषुस शैलि वष	६३
५ किनन वकनली री शैलि में	
शु वार, शील एवं सम्भारम का वषुसुत समन्वय	७५
६ दिवस कम्म में और और श्रुधार रत का वषुसुत मेन	८४
७ और वषुसई में नारी वषवना	१२
८ राजस्थानी लोक वीत	१३
९ डॉ एव की शैलिकोर्गि र्मार्कियर और वृत्तियर	११०
१ राजस्थानी का नवा रचनात्मक साहित्य	१२१

अपनी बात

‘राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रकृतियों’ मे मेरे दस निबन्ध संग्रहीत हैं। ये निबन्ध द्विती कम् से एक बाब नहीं मिले गये हैं। परन्तु अलग-अलग प्रसंगों पर लिखे गये हैं। डॉ० एन० पी० तैल्लोर : स्पेन्डाल और कृष्ण’ निबन्ध सन् १९२९ में लिखा गया था जब मैं बी. ए. का छात्र था। अखिल भारतीय फुलबन्द बोर्डिंग मेम अतिथीविता में यह पुरस्कृत भी हुआ। इस वर्ष का अन्तिम निबन्ध राजस्थानी का नया राजनारक साहित्य मेरा नवीनतम निबन्ध है जो सन् १९६४ में लिखा गया। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि इस संकलन में सन् १९५६ के लेकर १९६४ तक के बीच मिले गये राजस्थानी साहित्य में संबंधित, मेरे दस लेख संग्रहीत हैं। इनमें मे कुछ निबन्ध ‘परम्परा’ ‘राजस्थान भारती’ ‘अग्रदा’ आदि पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

बहु तो नहीं कहा जा सकता कि ये निबन्ध राजस्थानी साहित्य की सभी प्रकृतियों का स्पर्श करते हैं पर इतना सत्य है कि राजस्थानी साहित्य की भाषा इन निबन्धों में झंझटी रही है। पाठक इन निबन्धों को पढ़ते समय राजस्थानी साहित्य की सक्तिमता, शोचस्वता, विविधता परिभा और लोक तत्त्व से परिचित होता सकता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर के हिन्दी विभाग के प्राचार्य तथा अध्यक्ष डॉ० लक्ष्मण एच. ए., पी. एच. डी., डी. लिट ने अत्यन्त धरत पढ़ने हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ की प्रशिक्षा मिलने की जो महती कृपा की है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

यदि इन निबन्धों को पढ़कर साहित्य क्षेत्री और विज्ञान राजस्थानी साहित्य की विस्तृत होती हुई शरण को संरक्षित करने तथा अवगमने प्रबन्ध-रत्नों को उद्घाटित करने में विहित भी सफल हुए तो मैं अपने परिषद को कर्तव्य समझूंगा।

डॉ० नरेन्द्र मानावत

भूमिका

हर हिन्दी के बृहद् क्षेत्र में नये-नये अनुसंधानों से चितने ही नये-नये पक्ष-परमों का उद्घाटन हुआ है। ये पक्ष-परम जिनके ज्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान हुए हैं। इनके उद्घाटन से हिन्दी साहित्य के दृष्टिकोण का स्वरूप भी बलवान् रहा है और जिनके पारलामों में भी वितरित न हो रहा है। पंजाब में जिनके ऐसे हिन्दी पक्ष प्राप्त हुए हैं जो पुस्तकालयों में मिले होने के कारण अब तक विद्वानों की पहुँच में नहीं आ पाये थे। उन पर हर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। राजस्थान की ओरों में भी इसी प्रकार महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकट हुई है इससे राजस्थान में विद्यमान अनुसंधान साहित्यिक संवर्धन का ज्ञान चलता है। चितने ही अनुसंधान हुए हैं और हो रहे हैं किन्तु इन प्रकार संवर्धन का पूरा अनुमान अभी तक नहीं लभ सका है। जिनके बीच-निम्नान् इन परमों में प्रकट हुए हैं, वे इन सामग्री को जिनके में से बाहर भी ला रहे हैं और इनका परिचय पाने और देने के प्रयत्न भी कर रहे हैं। इन प्रकार इस संवर्धन का कुछ-कुछ मेला-बोला नहीं-सही प्रस्तुत किया गया है। आवश्यक यह प्रतीत हो रहा है कि इन सामग्री का एक न्व वितरित विवरण भी हो। प्रस्तुत ग्रन्थ "राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियाँ" से संभवतः ऐसे ही प्रकाश की पूर्ति किसी तीना तक होती है।

डॉ० नरेन्द्र भागवत एक जाने-माने लेखक हैं। इनके कुछ कृतित्व से ये पहले से परिचित का पर अत्युर जाने पर इनसे मिलने का भी सामान्य प्राप्त हुआ और इनके कृतित्व को भी और अधिक देखने का अवसर मिला। डॉ० भागवत एक लीये लम्बे व्यक्ति हैं, जिन्हें अध्ययन और अनुसन्धान में रुचि है। वह पीछा-ला पक्ष इनकी इसी रुचि का एक प्रमाण है।

राजस्थानी साहित्य के विद्यालय भाग में हुबकी लगाने पर जो राय निकले हैं, उनमें से कुछ का विवरण यहाँ इस संग्रह में प्रस्तुत किया गया है।

इस छोटे से संग्रह से लेखक ने जहाँ राजस्थानी गद्य की विविध विविध गीतियों और जिनमें रहे गये ज्यों का परिचय दिया है। इसमें हमें सं० १३०० में लेखक राजस्थानी की नमस्त गद्य संरति की दीर्घगद्य समृद्धि को देखकर राजस्थानी पर गर्व होता है। यहाँ की प्रतिभाओं से चितनी ही प्रभावपूर्ण पक्ष बोधियों की रसपूर्णकृतियों रिकतित किया।

इसी प्रकार 'राजस्थानी बाण साहित्यः एक पर्यालोचन' लम्बे गद्य 'बाण' संग्रह परम्परा की सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत है। इनमें लेखक ने प्रमाणसङ्ग्रहण शोध-कहानी के ही निष्कर्षात्मक किया है, जो न केवल राजस्थानी बाण साहित्य शोध-कहानी माना जा सकता है।

यह इस संग्रह में 'वैजि' विषयक तीन लेख हैं। इनमें 'वैजि' विजय की पृष्ठभूमि हो सकती है। इन पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला जा 'वैजि' की व्युत्पत्ति, वैजि परम्परा का इतिहास विभिन्न भाषाओं में की साहित्य वैजि साहित्य की विशेषताएँ और राजस्थानी वैजि साहित्य का सर्वेक्षण तथा वर्गीकरण देकर, और राजस्थानी वैजियों का विशेष अध्ययन किया है, और साथ ही 'वैजि' कितना स्वतन्त्र है या नहीं। डॉ० मानाशरण ने अपनी पी-एच डी के लिए 'वैजि' पर ही अनुसंधान किया था, यद्यपि इसके दो वे विशेषज्ञ ही हैं। यह इस निबन्ध का प्रत्येक शब्द प्रमाणित माना जायेगा।

द्वितीय काल में और और नृपार रस का सोराहरण कुम्हारों की निबन्धन बड़ा प्राथमिक निबन्ध है। वो प्रमुख और प्रबल रस किसे कीमत से द्वितीय क्रम एक शब्द में पूरे देता है यह तो स्पष्ट है ही इससे राजस्थानी की और नृपार नयी सामाजिक पृष्ठभूमि का संकेत भी मिल जाता है। यद्यपि लेखक इसके साथ नहीं बसा उसके दृष्टिकोण रस की निरूपण का सामान्य प्रस्तुत करना ही रहा है, पर भागे बढ़ने पर हमें आदिम मूल भाषों की सृष्टि का अनुमान लग सकता है।

इसके साथ लेखक ने महाकवि तुलसीदास विष्णु की प्रसिद्ध कृति 'बीर-रस' एवं 'भारत-भारता' के स्वयं का संस्करण किया है।

'राजस्थानी शोध-वैजि', 'डॉ० एन पी तैल्लोर' : व्यक्तिगत और कृतित्व तथा 'राजस्थानी का नया रचनात्मक साहित्य' शोध-विषय के नए समाप्ति हो जाता है।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह विरहित होना कि लेखक ने राजस्थानी साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है और उनसे संबंधित राजस्थानी साहित्य की पर्याप्त सभी सामग्री भी दी है।

इसके साथ ही हमें लेखक की विशेषण प्रवृत्ति तथा सीमावर्त्मिक दृष्टि की कदा चकता है। यह राजस्थानी साहित्य की नए को पढ़ने में सज्जन इसके मर्म को उद्घाटित करने में सफल है तथा उसकी पहचान उन जहाँ तक की सामान्यतः उपलब्ध नहीं।

इस तरह के विचारों को बढ़कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने जो लिखा है अपने प्रथम अध्ययन के आधार पर ही लिखा है, और यह एक बड़ी कमजोरी है। उन्मिष्ट सामग्री के उपयोग से अनेकों भ्रांतिपूर्ण अर्थ मिलते हैं और इनकी परस्पर समझी जाती जाती है। किन्तु यह भय इस लेखक की दृष्टि दौरी से नहीं हो सकता।

इस प्रश्न में हमें राजस्थानी साहित्य की लोक साहित्यिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। राजस्थान में लोक साहित्य की अद्भुत संवर्धन चारों ओर बिखरा हुआ है। साहित्य की उन्नी हुई श्रृंखलों की नींव के रूप में लोक-साहित्य का परिचय प्राप्त करके एक विशेष ध्यान मिलता है। क्योंकि राजस्थानी साहित्य की किसी स्तर पर भी लोक साहित्य में चढ़ने नहीं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की भूमि में ऐपिक-रस (पुरुष कथ्यत्व का रस) सर्वत्र विद्यमान है जिसमें पारिवर्तन मनोवृत्ति की दृष्टि का भी समर्थन है, रोमांच के रोमांच के साथ वीर्य के पुरुषार्थ के करतब हार में हार शक्ति मिल जाती है और उनमें व्याप्त बहु प्रतिभा की जितनी दिखायी पड़ती है जो इन अमर प्रपञ्च में नायिक अनुवृत्ति को राजस्थानी उन्मिष्टों में प्रतिबिम्बित करती है, जिसे महान से महान कविवर की संज्ञा दी जा सकती है।

राजस्थानी साहित्य में कथ्य की भी अनेकों अनेकों विधाएँ मिलती हैं और वच की भी अनेकों विधाएँ मिलती हैं। इन विधाओं का परिचय करते ही यह प्रश्न उठ सकता है कि इसकी विधाओं की सृष्टि क्यों हुई? निश्चय ही मूलतः इन विधाओं का जन्म लोक-वीर्य में ही हुआ है। यतः पृष्ठभूमि और साहित्य-कर्म के आधार के रूप में राजस्थानी लोक साहित्य की अन्तर्गत भी जहाँ वहाँ हमें मिल जाती है।

डॉ० आनाबत ने अन्तिम लेख में राजस्थानी के प्राथमिक हठित्व की भी एक झलक दी है।

पुनः प्रश्न प्रतीत है कि डॉ० आनाबत की इस दृष्टि का दार्शनिक स्थापित होना।

—डॉ० सुरेन्द्र

[अथ पृ० पी० एच० डॉ० डॉ० टि]

२४ अप्रैल १९६२

भाषाया तथा अध्ययन
हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

इसी प्रकार 'राजस्थानी वात साहित्यः एक पर्यालोचन' में राजस्थानी कलात्मक गद्य वात' संज्ञक परम्परा की सर्वात का पर्याप्त विस्तार के परिचय दिया है। इसमें लेखक ने सश्रमसहचयेसु लोक-कहानी ॥ ॥ की निर्माण की तकनीक का वर्णन किया है जो न केवल राजस्थानी वात साहित्य की तकनीक है, बल्कि लोक-कहानी मात्र की है।

तब इस संघर्ष में 'वैशि' विषयक तीन लेख हैं । इनमें 'वैशि' विषयक चितनी भी पृष्ठाएँ हो सकती हैं जन पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला गया है । 'वैशि' की ध्युत्पत्ति वैशि परम्परा का इतिहास विविध भाषाओं में 'वैशि' साहित्य वैशि साहित्य की विशेषताएँ और राजस्थानी वैशि साहित्य का सर्वोच्च तथा वर्गीकरण देकर, और रसात्मक वैशियों का विशेष अध्ययन किया है, और साथ ही 'वैशि' जिसन लक्ष्यहीन है वह भी । डॉ० भानावत ने अपनी पी-एच डी० के लिए 'वैशि' पर ही धनसंबंध किया था, मतः इससे तो वे निश्चय ही हैं मतः इस निबन्ध का प्रत्येक शब्द प्रमाणपूर्ण माना जायेगा ।

हिमाल काव्य में भीर भीर भू वार रस का लोपाहरण रूप-संज्ञी निबन्धन बढ़ा प्राक्कर्षक विबन्ध है। दो प्रमुख भीर ब्रह्म रस किस कीर्तन से हिमाल कवि एक संर में बूँब वेता है वह तो दृष्टव्य है ही इससे राजस्थान भी भीर-भू वार सभी सामाजिक कृच्छ्रसूचि का संकेत भी मिल जाता है। बचपि मैत्रिक इससे घाने नहीं मवा उसका दृष्टिकोण रस की विनिश्चिती का ध्यान प्रस्तुत करता ही रहा है पर घाने बढ़ने पर हमें धाविन मूल भावों की सृष्टि का अनुमान लग सकता है।

इसके प्राप्ति से एक ने महाकवि दुर्बलस मिश्र की प्रसिद्ध कृति 'वीर-मत्त हर्ष' में पाटी-भाषणा के स्वप्न का उद्घाटन किया है।

‘यजस्वानी ब्रह्मणीय’, ‘बौ० एन पी ऐस्तिहोति : व्यक्तित्व और कृति’ तथा ‘यजस्वानी का नया यजमानक व्यक्ति और ईश्वर निबन्ध से प्रयत्न की जाता है।

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह विदित होगा कि मेजर नै राजस्थानी साहित्य की कुछ महत्वपूर्ण प्रकृतियों पर प्रकाश डाला है और उनसे संबंधित राजस्थानी साहित्य की पर्याप्त नवी सामग्री भी दी है।

इसके साथ ही हमें भेषक की विरूपक प्रकृति तथा शीघ्रबर्तमानोपक दृष्टि का भी पता चलता है। वह राजस्थानी साहित्य की गह को पकड़ने में समर्थ है, उसके दर्प को उद्घाटित करने में समर्थ है तथा उसकी पहुँच उन प्रबंधों तक है जो सामान्यतः अपेक्ष्य नहीं।

इस ब्रह्म के निबन्धों को बढ़कर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने जो लिखा है अपने प्रत्यक्ष अध्ययन के आधार पर ही लिखा है, और यह एक बड़ी उपलब्धि है। उच्चैःश्रुत सामग्री के उपयोग से अनेको भ्रान्तिपूर्ण जन्म लेती है, और उनको परम्परा बनती जाती जाती है। किन्तु यह अब इस लेखक की कृति होने से नहीं हो सकती।

इस पद्य में हमें राजस्थानी साहित्य की लोक साहित्यिक पृष्ठभूमि का भी ज्ञान होता है। राजस्थान में लोक साहित्य की समृद्ध संरचना कारणों और विषय मान है। साहित्य की उड़ी हुई प्रणवियों की नींव के रूप में लोक-साहित्य का परिचय प्राप्त करके एक विशेष ध्यान मिलता है। क्योंकि राजस्थानी साहित्य को किसी स्तर पर भी लोक साहित्य से बाँधेज नहीं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की भूमि में ऐकिक-तरंग (दुपल काव्यत्व का तरंग) सर्वत्र विद्यमान है जिसमें धार्मिक मूल मनोवृत्ति की दृष्टि भी पकपती है, रोमांच के रोमांच के साथ पीछे के पुस्तक के करतब हवा में हवा जाने मिल जाते हैं और अपने व्याप्त यह प्रतिष्ठा भी बिनाही विस्तारी पढ़ती है जो इस समय प्रबंध में धार्मिक समुद्रों को धनात्मक उच्छिन्न में अभिव्यक्त करती है जिसे महान से महान कविता की संज्ञा दी जा सकती है।

राजस्थानी साहित्य में राज्य की भी अनेकी अनेकी बिघाएँ मिलती हैं और मध्य की भी अनेकी बिघाएँ मिलती हैं। इन बिघाओं का परिचय पाते ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि इतनी बिघाओं की सृष्टि क्यों हुई? निश्चय ही मूलतः इन बिघाओं का जन्म लोक-जीवन में ही हुआ है। अतः वृत्तभूमि और साहित्य-कर्म के आधार के रूप में राजस्थानी लोक साहित्य की पकड़ भी उहाँ उहाँ हमें मिल जाती है।

डॉ० जगदीश ने अन्तिम लेख में राजस्थानी के साधुविद्वत् इतिवृत्त की भी एक झलक दी है।

मुझे बूझा जाता है कि डॉ० जगदीश की इस कृति का हार्दिक स्वागत होना।

—डॉ० सुरेन्द्र

[एम. ए., पी. एच. डी.]

२४ अप्रैल, १९६१

भाषाया तथा अध्ययन

हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थानी गद्य की विशिष्ट शैलियाँ

राजस्थानी साहित्य गद्य की दृष्टि से जितना विभाजित है विष्णुपुराण और हरिमायक है गद्य की दृष्टि से भी उतना ही विपुल और विविध प्रकार का है। राजस्थानी गद्य की महत्ता प्राचीनता की दृष्टि से ही नहीं है अपनी रूपरस एवं शैलीगत विविधताओं के कारण भी वह समूचे भारतीय गद्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। राजस्थानी गद्य साहित्य जिस प्रकार अपनी शीघ्र स्विता, विचारमद्धता और लचीलता के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार उसका गद्य साहित्य भी अपनी स्पष्ट भाव-स्यञ्जना यथातथ्य चित्रणक्षमता और एक विशेष प्रकार की आनुमानिक संस्कारमयी शैली के लिए विभूत है। परन्तु निम्नलिखित से हमने राजस्थानी गद्य के ऐतिहासिक विकास-क्रम को नष्ट कर इसके रूपगत एवं शैलीगत वैशिष्ट्य को ही अपना प्रविष्टि बिन्दु बनाया है।

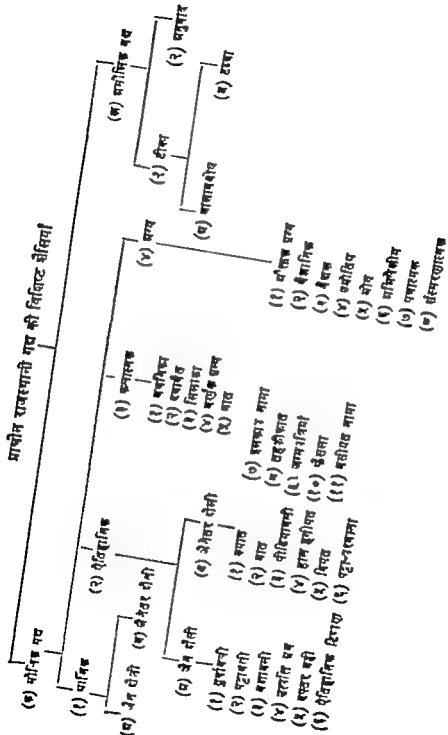
सामान्यतः हिन्दी भी भाषा के साहित्य में गद्य का विकास सर्वप्रथम दिखाई देता है। पर सृष्टि के आरंभ में मानव ने अपने दैनन्दिन व्यवहार में अभिव्यक्ति का माध्यम गद्य ही स्वीकार किया हुआ। यही दैनन्दिन व्यवहार की भाषा (जिसे बोली कहना अधिक सुविधाजनक है) जब बाह्य व्यञ्जनरस आदि से संपन्न हो साहित्यिक रूप (निश्चित स्वरूप) ग्रहण कर लेती है तब एक शैली बन जाती है। ऐसी धार धारने भाषा में कई धारें दिखाये हैं। सामान्य रूप में यह धार रचना प्रणाली या शैली का बोधक है। अल्पलिखित अवधि में ऐसी से गद्य-शैली का ही बोध होता है। प्लेटो के अनुसार जब भाषा के संपन्न की प्रत्यक्ष दृष्टि और प्रायः-पूर्ण की अल्प अभिव्यक्ति होती है तब ऐसी का बोध होता है। यदि हम बत्तीटी पर राजस्थानी गद्य को (या किसी भी भाषा के प्राचीन गद्य को) बना आये तो निरसंकोच कहा जा सकता है कि उसकी धारनी कोई ऐसी नहीं है। बोली तो ताकि मैं तुम्हें जान सके ऐसी व्यक्तित्व शैली के दर्शन प्राचीन राजस्थानी गद्य साहित्य में नहीं होते, हाँ जातिगत या समुदायिक ऐसी की पहचान सरलता से की जा सकती है जैसे— जैसे ऐसी या बारह ऐसी।

शैली का सम्बन्ध मूलतः अलङ्कार-कला से रहा है। किसी को प्रशिक्षण देने के लिए सरल व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया जाता है और थोड़ा पर प्रभाव डालने के लिए विस्तृत-प्रलङ्ग शैली का। इन्हें क्रमशः एटिक और 'एथिमा टिक' शैली कहा गया है। राजस्थानी वच में सामान्यतः ब्याजों में पहले प्रकार की और बातों में दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्राचीन राजस्थानी वच में 'Style is the man' जैसी शैली का विकास नहीं मिलता बल्कि तो वच के जो विभिन्न काव्य-रूप हैं उन्हें ही विभिन्न शैलियों के रूप में देखना अधिक समीचीन होगा। इसी आधार पर हम प्राचीन राजस्थानी वच की विभिन्न शैलियों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थानी वच साहित्य में कई काव्य-रूप—रास, रासो बीरई, बंदि बचरी बाल बीड़ालिया छंदालिया बैलि पवाड़ा काव्य भंवर बरत बाहुमाता बिबाहुलो संवाद, भातअ, बावनो कुलक डीयानी, रेसुअ सगम्राय, स्तोत्र स्तवन प्रादि—विकसित हुए। इन्हे राजस्थानी वच साहित्य की विभिन्न शैलियों के रूप में देखा जा सकता है। राजस्थानी वच साहित्य में ही इस प्रकार के कई काव्य-रूप—वचनिका वचनैठ सिलोअ, बालाव बोव टम्बा क्वाठ बाठ पट्टावली बंसावली वपतर-बही प्रादि—विकसित हुए। ऐकाधिक छंद प्राचीन राजस्थानी वच को विशिष्ट शैलियों और उनके रूपों को इस प्रकार वर्गीकृत जा सकता है—

प्राचीन राजस्थानी गद्य की विविध शैलियाँ



(२) ऐतिहासिक गद्य :

धार्मिक गद्य के बाद ऐतिहासिक गद्य की परम्परा शुरू हुई । यह परम्परा जेब और जेनेटर इन दोनों मैमियों में विकसित हुई । ऐतिहासिक गद्य-लेखन के मूल में अपने बंध गत-सम्प्रदाय और विगत धीरे-धीरे तथा वर्तमान जीवन के साहित्यिक कार्यों को समर समिट बनाये रखने की भावना निहित रही है । प्रचलित-लेखन की परम्परा ही पुराण से बनी जाती हुई मिलती है । यह इतिहास-लेखन का कार्य स्वतंत्र रूप में भी जाता और पेसेवर लोगों द्वारा भी सम्पादित करवाया गया । रामस्यानी गद्य के विकास में इससे बड़ी सहायता मिली ।

धार्मिक गद्य की जाँच ऐतिहासिक गद्य को भी प्रारंभिक सहयोग जैन विद्वानों और व्याख्याओं का ही मिला । इन विद्वानों में गुर्वाक्षी, पट्टाक्षी, बंधा-बन्नी उत्पति एवं बन्धु-बन्नी और ऐतिहासिक टिप्पण के रूप में इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री को सुपुष्टित रखा । गुर्वाक्षी में गुद-परम्परा का विस्तृत और विस्तृत चरित्र वर्णित रहता है । स. १४८२ में लिखित श्री जिनचर्मन की 'गुर्वाक्षी' में अंतिम तीर्थंकर जगन्नाथ महावीर स्थायी से लेकर पचासवें पट्टाक्ष माचार्य श्री सोमकुन्दर सूरि तक के उपर्युक्त व्याख्याओं का विवरण है । पट्टाक्षी^१ में बन्धु विरोध के पट्टाक्ष व्याख्याओं का जन्म बीछा साधनाकाश बिहार मुसु मादि का विवरण तथा उनकी सिद्ध-सम्पदा और प्रभावना का ब्यापक विवरण निहित रहता है । उत्पति एवं^२ में किसी सम्प्रदाय विरोध की उत्पत्तिकासीन परिस्थितियों का, उसके प्रवर्तन के कारणों व प्रवर्तक की जीवन रेखा का वर्णन होता है । ये तीनों रूप (गुर्वाक्षी पट्टाक्षी और उत्पति एवं) प्रधानतः जैन-अग्रणी और उनके लोगों की ऐतिहासिक जानकारी में से 'जित' है । जैन भावकों की विवरणिका बंधावली^३ रूप में लिखी गई है । इन बंधाव

१- उत्पट्टे की जिनचर्मन सूरि स. १४०० वर्षों यासाङ्ग बाँध ६ दिने पट्टाक्षिक पना । उत्पट्टे श्री जिनचर्मन सूरि स. १४०६ वर्षों माह सुदी १० दिने पट्टाक्षिक गया ।—बैराग्यबन्धु पट्टाक्षी

२- अंजन उत्पति, अमरुत्पति आदि स

• करमचन्द मानावत रो प्र० बिटा २ यावचन्द्र १ लक्ष्मीचन्दर २ भावचन्द्र रो बिटा १ मनोहरदास १ राजा सूरजतिथ मुहूर्त ऊपर कोषियो तिहारे पीर बिटा की श्री मासुछ १००० मेता बाव चर दोसो किरियो ।—मुहूर्त बंधावली बंधावली

निर्वाह में आबकियों का बंध, उसका उत्पन्न और कार्य भावकों के बंधों का नाम उनका कार्य और स्थान तथा उनकी वर्तमान स्थिति का विवरण मिलता है। दूसरे-बही^१ एक प्रकार की डायरी-जैसी है जिसमें राजनामों की माँति ऐनिक व्यापारों का विवरण लिखा जाता है। इस विवरण में न विजय का क्रम होता है न बटनामों का क्रम। ऐतिहासिक दृष्टि से एक प्रकार के स्पष्ट ऐतिहासिक नाट है, जिन्हें व्यक्ति विशेष ने अपनी रुचि के अनुसार संशुद्धि कर लिया है।

जैनधर्म विद्वानों ने ऐतिहासिक गद्य को जैन विद्वानों की संपत्ति अधिक व्यापक परिधि में देखा। इसका कारण यह रहा कि जब सन् १६७४ में प्रथम रूप में अपने यहाँ इतिहास विभाग की स्थापना की तो देशी राज्यों के प्रतिनिधि भी बाराणासी की दृष्टि में अपने आपको ऊँचा लाबित करने की प्रार्थना करवाते थे अपनी मान-मर्यादा का विवरण इतिहास लिखवा कर कछने सने। यही निजम-नरसिंही 'स्वात' कहलाई। इसके पूर्व भी कुल्लुक, महम्मद और बाद बंधा बनी तथा वीरमावली लिखा करते थे। सबका है स्वात इन्हीं बंधावतियों और वीरमावतियों का विकसित और ग्रीक रूप है। इन स्वातों में सामान्यतः प्रसिद्ध राज-बंधों और राजाओं का बंधानुक्रम तथा राज्यानुक्रम में क्रमबद्धता नज़र आती है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं स्वातकारों ने अपने वाक्य बाँटा राजाओं की धर्तरेजनापूर्ण प्रसंगा की है फिर भी बध्यपुत्रीन सामन्त जीवन के सामाजिक इतिहास की दृष्टि से इनका अध्ययन बड़ा महत्वपूर्ण है।

श्री रामस्वामी निपाठी ने इन स्वातों की चार शायों में विभाजित किया है (१) इतिहासपरक स्वात (२) बारखापरक स्वात (३) व्यक्तिपरक स्वात (४) स्पष्ट स्वात। इतिहासपरक स्वात में किसी एक ही राजवंश के राजाओं का क्रम में लेकर प्रायः एक बिना बर्णन काल-क्रम से लिखा जाता है। 'दयानंद नरी स्वात' इन वर्ग की प्रतिनिधि रचना है। इनमें बीकानेर के राजा बाबाओं में लेकर बहादुरा प्रभुसिंह तक का इतिहास दिया गया है। दयानंद ने इतिहास वर्ग की पूर्ण रचना की है। उसने जहाँ अपने चरित्र-नामों की विजय पुत्री

१- संवत् १८०६ में प्यासुन बदि ११ दृष्ट चन्दा ११/२३ तथा दुनामबदरे दिव्य विजयचन्दरी दीया: दीया १० व १० चमकत चन्दा मंदार दानत दीयो।

२- सं० १९१४ ईस बदि ३ निवात नामममान जैतारण भापी राठोड़ राजपूत लीबावत नाम मायो। बोट बादि ११२१ दी। बोट १० क्रम प्रभावत कछयो नी।

३. बध्यपुत्रीन स्वात नादिरय परमराय भाव १३-

का सम्मेलन होकर वर्णन किया है। वहाँ उनकी विचरताओं और दुर्बलताओं को भी ठट्ठस भाव से देखा है। बारतापरक कथा की प्रतिनिधि रचना 'मुड़वा मैगुलीरी' कथा है। मैगुलीरी के स्वात-रचना पद्धति को नवीन रूप दिया। उन्होंने स्वात का स्वयं केवल राजवंशी क्रमबद्धता तक ही सीमित न रखकर उसे विविध बार्ताओं के संकलन की दृष्टि तक विस्तारित कर दिया। इस संक्रमण में जो इतिहास का रूप निखरता है वह किसी एक राजवंश का न होकर विभिन्न राजवंशों और विविध प्रदेशों का है। वहाँ जो बार्ताएँ पाई हैं वे क्रमात्मक गद्य की बार्ते न होकर विस्तृत ऐतिहासिक बार्ताएँ हैं जिसका उद्देश्य घटना-वैचित्र्य और मनोद्वन्द्वन न होकर सम्प्रतिष्ठा और इतिहास-सेवन है। व्यक्तिपरक स्वातों में स्वात मैसूर ने अपने किसी एक पात्रय बाता को भी धर कर प्रस्तुत की है उसके परामर्श को भी विजयधी से संकेतित दिखाया है। इन स्वातों का महत्त्व ऐतिहासिक दृष्टि से गहन है पर तत्कालीन जीवन के सामाजिक प्रत्ययन की दृष्टि से अप्रसिद्ध है। स्फूर्त कथाओं में इन रचनाओं को रखा जा सकता है जो छोटे छोटे फुटकर मोटस' के रूप में हैं और जिनका कोई क्रम नहीं है। बाँकीबातरी स्वात' ऐसी ही रचना है। इसमें २७७६ बार्तों का संग्रह है। वज्जे घनों में इसे स्वात नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'जेजक को जब जो बात मोट करने योग्य मिली, उसने उसी उसे मोट'कथनिया। उनमें कोई क्रम नहीं है। क्रम से बचाने का भी उससे श्रुतसादक इतिहास नहीं बनता। अधिकतर बार्ते दो-दो प्रवक्ता तीन-तीन पक्षों की ही हैं। पूरे पृष्ठ तक बचने वाली बात कोई बिरजो ही है"।^१

स्वात के अतिरिक्त गाल हूब हूबीपत, बिजत, आदि ऐतिहासिक गद्य के अनेक रूप मिलते हैं। 'स्वात' की मुख्य विशेषता यह होती है कि उसमें सामान्यतः प्रबन्ध रूप में लिखा हुआ अमानुष वर्णन होता है जबकि वे अन्य रूप किसी एकाग्र प्रसंग को लेकर ही अपनी भाषा समाप्त कर लेते हैं। 'स्वात' और इन 'गाल आदि अन्य' बीच एक तीसरा रूप और है जिसमें प्रमाणित एक व्यक्ति के जीवन से संबंधित घटनाओं का विस्तृत वर्णन तथा अन्य प्रासंगिक उल्लेख भी रहते हैं। इस रूप की फारसी के नामा^२ भाषक घणों के समकक्ष रखा जा सकता है। बलपत बिमास^३ इसी प्रकार का एक ग्रन्थ है जिसमें बीकानेर

-बाँकीबातरी स्वात : श्री नरोत्तमदास रत्नायी प्रस्तावना पृ० २

-बाबरनामा हुमायूँनामा अकबरनामा जहाँगीरनामा आदि ग्रन्थ ।

-सम्पादन : राजत सारस्वत, प्रकाशक-साधुस राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट

के महाराजा रामसिंह के द्वितीय पुत्र हलपतसिंह की स्थितीपरस्वा बीबाब
कर्मचन्द बन्धुवत्त के कार्य रामसिंहजी के पुत्र भोपत का कष्ट होगा उसपर भाग
जाना दलसिंहजी को मारने का बह्यर्थ वात्स्यकाव में दिखलाई पई उसकी
बीछता प्रकार के बरवार में की पई उसकी सेवाओं पारि का वर्णन है। राज
स्थानी पक्ष में तो इस प्रकार के कई करिय पक्ष मिले नये हैं पर राजस्थानी
पक्ष में निम्न नवा यह प्रवेला ही परिचित न है जो जो अनुप ।

पट्टा-परवाना इनकाबनामा जगम गिरिया तथा ठहकीकत भी ऐतिहासिक
 वर के सम्य रूप है । राजाओं द्वारा भी कई जागीरों का अधिकार—यत्र और
 वसुध विवरण पट्टा कहलाता है तथा इसका राजकीय मात्र—यत्र परवाना ।
 वर—यत्रद्वारा के संबंध को इनकाबनामा और प्रसिद्ध पुस्तों की सम्मिश्रणियों
 को सम्मनगिरिया कहा जाता है । ठहकीकत में किसी सामंत की सैनिक से
 संबंधित पत्र-विवरण के प्रयोजनों का संबंध होता है । केंपना और वतीकतनामा
 भी इन वर का एक प्रकार है ।
 ऐतिहासिक वर को भी ऐतिहासिक वर कहा जाता है ।

ऐतिहासिक तथ्य दो चीजों में भिन्ना भिन्नता है। जैन सैली और जैनेतर या चारण सैली। जैन सैली को भाषा बोधवस्तु की भाषा है पर उसमें संस्कृत विभक्तियों का प्रभाव स्पष्ट है। चण्यों की सिंगाने या उभयें वायुनचून परिवर्तन करने की प्रकृति यहाँ नहीं है। भाषाओं की प्रचलित में पार्श्वकारिक सैली का व्यवहार व्यवहृत हुआ है पर उनमें ऐतिहासिक प्रमाण नहीं होती। इतिहास की विश्वस्तुता और वयाव्यपारक सामग्री सङ्ग्रह की ईमानदारी के दर्शन यहाँ पवित्र होते हैं। जैन सैली के मुख्य सामान्यतः जैन संत या भाषक रहे हैं वे कृति के छायापत्र में नहीं पने दे। यथा किन्ही लौकिक राजा की सम्मान-वाचक्युत्तों उन्हें नहीं करनी पड़ती थी। चारण सैली को भाषा में अधिक परिवर्तन और मोक्ष मिलता है। राजकीय कर्मचारियों द्वारा भी साहित्य लिखा गया उनमें साहित्य के कई स्वयं संक्षिप्त और प्रशंसात्मक हैं पर स्वतंत्र रूप से जो व्यापक साहित्य लिखा गया वह अधिक विश्वव्यापी है। इन सैलकों में अपनी भाषा में घर-घर की भाषा के शब्दों का काफी प्रयोग किया है क्योंकि इनका सामान्य बुधन वातावरण से अधिक निकट का रहा। भाषा में प्रादुर्भाव से ही रचना होती है। लोकोक्तिों और मुहावरों का प्रयोग भी देखने की मिलता है।

(३) कलात्मक गद्य :

(३) कलात्मक गण :

समात्मक रूप की सृष्टि राजस्थानी साहित्य की अपनी मौलिक सृष्टि है।

ब्रजभाषा में कला के क्षेत्र में यद्यपि कोई रूप प्रतिष्ठित नहीं हुआ। यद्यपि साधारण स्तर में ही व्यक्त किया गया। बारीकी कटाव कटाव व बनाव को पद्य के लिए ही लुप्त रखा। राजस्थानी पद्य में यह कलात्मक रूप मुख्यतः २ विधाओं में मिलता है—वचनिका बनावैत विनोदक वस्तु के चर घोर भाव। इनमें से प्रथम तीन विधाएँ वचनिका भी हैं और पद्यवद्ध भी हैं। संक्षेप में ये तीन ही दृष्टि से यह कलात्मक रूप दो भागों में विभाजित मिलता है (१) वच पद्यात्मक और (२) पद्यात्मक। इसे तुल्यतः पद्य और अनुपम्यतः पद्य भी कहा जा सकता है।

राजस्थानी पद्य की यह सम्बन्धानुसार—दीर्घा करती की अनुशासनिक वच दोन्नी और प्राकृत की कवा-वाक्याविक्रमों में प्रयुक्त वच दीर्घा से प्रभावित हो जाती है। वचनिका विधा इस प्रकार की महत्वपूर्ण होती है। बर्हि टोपी में वचनिका की पहचान बतलाई है पद्य की तुल्यतः जिन वामन द्वारा बताए गए कालकर्मिक (जिनमें कहीं पर पद्य का आभास हो) की क्रमिक में रक्षा का संस्था है। पर यहो मात्र पहचान 'वचनिका' की नहीं है। पद्य की तुल्यतः तो और कदा में भी मिलती है। 'रघुनाथ कर्क' में दिए गये 'वचनिका' के लक्षण को संतोषित करते हुए भी अक्षरान्तर ग्राह्य में लिखा है—वचनिका के ही भेद होते हैं—

(क) पद्यवद्ध (या पद्यवद्ध) जिनमें मापानों का नियम होता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) जिसमें छठ-याठ मापानों के कुछ कुछ पद्य वच हों और

(२) जिसमें बीस-बीस मापानों के कुछ कुछ पद्य वच हों।

(ख) पद्यवद्धः—जिनमें मापानों का नियम नहीं होता। इसके भी दो भेद होते हैं—

(१) बारता (कहीं कहीं तुल्यतः पद्य के लिए भी बात बार्ता का बर्हि नाम का प्रयोग होता जाता है। या साधारण पद्य।

(२) तुल्यतः पद्य।

वचनिका बारता और दीर्घ दोनों हीनियों में मिलता है। बारता दीर्घा में मिली गई वचनिका की दीर्घा वचनिका (विनोदक वस्तु) और 'छठीय रत्न' की महेश्वरीय दीर्घा वचनिका (लिखित वस्तु) महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

१—मध्यकासीन हिन्दी पद्य : श्री हरिभोजन श्रीवास्तव १०४१

२—राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १ में विहित 'राजस्थानी पद्य वच पद्य' की दीर्घा के।

पहली कृति में पायरीय के लीली शायक बबलदास और माहू के सुमलान बलर
दा बीरी^१ का युद्ध बर्णन तथा राजपूतों के बीहड़ का दृश्य है। इसमें यह और
यह साब-साब बतलै है। गद्य भाग में युद्ध और राज्या-वर्णन है तो पद्य भाग में
बीहड़-वर्णन। बहात्तक काव्य और काव्यात्मक गद्य का सशक्त परिचय इस ग्रंथ
में पहलीबार मिलता है। यहाँ जो गद्य प्रयुक्त हुआ है वह सुकाश^२ भी है और
प्रसन्न^३ भी। दूसरी कृति में उज्जैन के समीप हुए युद्ध का वर्णन है। इसमें
ओमपुर के महाराजा जयवर्तसिंह की ओर से योगेश्वर और भुवह के निवास
लड़ते हुए रत्नलाल मरीच की रत्नसिंह काय पाये। ये रत्नसिंह ही इसके नायक
हैं। इसमें पद्य का प्रयोग बहुत ही कम है। अनुशासनात्मक गद्य^४ का प्रवाह देखते
मिलता है।

जैन लीली में मिली गई वा बचनिकाएँ मिली हैं (१) जिनसमुद्रपुर की
बचनिका और (२) शालिवाहर सूरि की बचनिका। पहली बचनिका में राजमातल
के पद्य का वर्णन है जिन्होंने जिन समुद्र सूरि को सत्सम्मान करती राजधानी में
आयोजित किया था। दूसरी बचनिका में शालिवाहर सूरि के पद्य एवं विभिन्न
राजघराणों द्वारा किये गये उनके स्वागतोत्सवों का वर्णन है। दोनों रचनाएँ
महाराजानुमानात्मक गद्य में मिली गई हैं। वर्ण्य विषय को देखने में यह स्पष्ट
हो जाता है कि चारण लीली में मिली गई बचनिकाएँ वहीं पुंड, बीहड़, मुत्तु

१—डॉ० बसरव घमाँ ने साहिबानम और बीरीयव का यह गूढ़ नाम
दिया है। —बबलदास लीलीरी बचनिका: डॉ० दीनानाथ कवी में
डॉ० घमाँ का लेख, पृ० ५६

२—बाहिर साहिबगढ़ साहि बिजाड़, बमियाँ साहिकंपि बुबाल सबल साहि
मान-बरहन, निबल साहि कायवा बारज संगान साहि—पृ० २१

३—इसी परिचय लड़ना भागना करता बारतो महा बल्लवी बारय पुब मातल
पड ली दूसरी घल्टी बार नपाप्ती हपी। बच-बल पिड मसाल करक
की बाहि। मरयो-मरयो दुबह दल मानरया। पृष्ठ २४

४—मु लीसरो महाभारत भायम कहता डरैणु सेत
मनि तोर मायसी।
पवन मायसी॥
मरदंभ एवदंभ गजपाज मुदडी।
हिरु मनुष्यराज लडली॥

घरि से संबंधित हैं वही जैन वचनिकाएँ जैनाचार्यों के यक्ष प्रभाव स्वान्त ब्रमापेह घरि से बाहर हैं । वचनिका खेती में घासे बनकर ब्रजभाषा को भी प्रभावित किया फलस्वरूप सन्निवृत्तिघोटी और सन्निवृत्ति मोहिनी की 'भी स्वामीजी महापद्म की वचनिका' अस्तित्व में आई^१ ।

कमारवक्त्र यक्ष का वृक्षरूप रूप बनावैठ है । यह रूप फारसी रचना खेती से राजस्थानी में आया । रंजित में खेतों का प्रचार काफी रहा 'वैठ' घरि धरती भाषा का है । छिन्नखेती से लाहवाना इसी वैठ छन्द में लिखा है । यह 'वैठ' छन्द पिचल के बीठा छन्द (कुल २९ मात्राएँ १४, १९ पर यति) से मिलता-जुलता है^२ । 'बनावैठ' इनसे भिन्न प्रकार की रचना लपटी है । रघुनाथकृष्ण के आधार पर इसका सबसे स्पष्ट करते हुए बाह्याजी ने लिखा है—बनावैठ के दो भेद होते हैं (१) पद्यबद्ध (या पद्य बद्ध) इसमें २४

४ मात्राओं के कुछ कुछ पद्य बद्ध होते हैं (२) पद्यबद्ध—इसमें तुकतुक पद्यबद्ध होते हैं, मात्राओं का कोई नियम नहीं होता । वचनिका के चतुर्थ भेद और बनावैठ के द्वितीय भेद में कोई अन्तर नहीं देख सकता ।

बनावैठ संज्ञक रचनाएँ जैन और नारण दोनों खेतीयों में लिखी गईं । बाह्याजी ने जैन खेती में लिखित तीन बनावैठों । (जिन मुर मूरि, महापद्म लकारत और जिनमात्र मूरि) का उल्लेख किया है^३ । नारण खेती में लिखित २२ बनावैठों की सूचना श्रीधरप्रसाद सेखरत के लेख से मिलती है^४ । इन रचनाओं का धर्म-विषय विविध है । जैन बनावैठों में सामान्यतः धर्म-नायक की गुण-गाथा आई गई है । पर नारण-खेती में लिखित ये बनावैठ धर्म-नायक की गुण-गाथा के प्रतिष्ठित नवर, मुक्त राज्य, वैभव प्रारब्ध बलप्रिय आदि विभिन्न विषयों के वर्णन से संबंधित हैं । जैन खेती की इन रचनाओं में पद्य तुकान्त और प्रवाह मुक्त है^५ । नारण खेती में कहीं-कहीं पद्य में पाये

१—अभ्युपगमिनी हिन्दी वचन : हरिमोहन श्रीवास्तव : पृ० ५२

२—राजस्थानी साहित्य में प्राप्त बनावैठ रचनाएँ : श्री श्रीधरप्रसाद सेखरत, वचनिका वर्ष १३ अंक ४ पृ. ३४

३—प्राचीन कवियों की रूप परम्परा : श्री प्रवरवन्द नाहटा पृ० ११५-१२०

४—वचनिका वर्ष १३ अंक ४ पृ० १४-२०

५—वही घाटी से पार, बैठो दरवार ।

जाने जाने प्रसिद्ध चम्पारण्यकार बमलुसवाई की छटा भी यहाँ गद्य में दिखाई देती है^१। सीमरस-बर्तन में जिन उपमाओं का प्रयोग किया गया है वे भाषा को मानित्य ही नहीं प्रधान करतीं बल्कि स्थानीय रस को भी सुझाव देती हैं^२।

कमात्मक गद्य का तीसरा रूप है 'सिलोका'। इसे सलोका भी कहा जाता है। इसका मूल शब्द 'श्लोक' है। इसकी रचना का प्रारम्भिक कारण बार की सिखा एवं बुझिरपीला लेना रहा होगा। लामे के हाथ कुछ श्लोक बड़े बाकर बार को भी उत्तर में कुछ श्लोक बोलने की प्रथा रही होगी। 'रघुनाथकण्ठ' में हमें गद्य का ही एक प्रकार माना है। शब्द में कुछ मिलने और सारों की सीमितता के कारण यह शैली^३ काव्य जैसी लगती है। इसके निर्वास में जैन-जैनार लामे विद्वानों तथा भाषारण्य लोगों ने भी योग दिया है। इसका वर्ण-विशेष मुख्यतः देवी-देवताओं और चोर-चोरों का गुल-पान ही रहा है।

कमात्मक गद्य का चौथा रूप 'बर्तक' शब्दों की रचना है। इन शब्दों में विभिन्न वस्तुओं के बर्तन का संघट्ट होता है। यह बर्तन सार्वजनिक रीति में किसी वस्तु विशेष—देख नकर, बल समूह बरी राबा, दुध, स्त्री, पुरुष, प्रहसि कला, देव, मोहन आदि के लिए प्रार्थना रूप में स्वीकृत होता है। तथा 'गुंवार' ऐसे ही बर्तक शब्दों का महत्त्वपूर्ण संकलन है।

इसमें राजस्थानी गद्य की तुल्यगुणता, प्रार्थनात्मकता व विभात्युता और

१—पूर की ठरक पकावटी बर। पेरू का रैबास। गंधू का पैस। पूरलों का चाम। नकनू का मोहला। कमानू का कोट। हीमडू का बहर, बाकू का मोट, पुकनू का चबूतण, सबनू का रैबास, कुकरनू का कोकर प्रमनू का ऐबास।—आहुर रघुनाथसिंह जी की बचनेठ दुर्गारत बाधक हव।

२—पाना की बीर। सायल की तीर ॥ नैह की सागर। बभन की पापर ॥ पूरत की महवी। देत की हीजी ॥ ऐय को लली। कुरत को बचो ॥

३—जोने सीदारत इसकीजी बाणी, सुनर गाय ने जाये सुहाली ॥

मैसाबन इणमन विपही सरलाई, बीरं पचणं ऐ भीकी बड़ाई ॥

—रघुनाथ कण्ठ

४—जिमी एक विरहिणी हुई ?

विद्यावत्ता चाहति कति कर बनावत्ता।

बरे गुंवार, पावद व नार।

प्रचुरता' के एक ही साथ दर्शन होते हैं। नाहट्यजी ने 'समाश्रुगार' में केवल तीन सैनी में लिखित बर्लूक व बों का ही संकलन किया है। बारण-सीनी में लिखित बर्लूक संघ भी काफी संख्या में मिलते हैं। राजान राजत से बात बखान कीकी पवित्र नीवागत से बोपहरो बाधिसास या भुत्तमाभुप्रास इस प्रबर्न में दृष्टव्य है।

कसारमक वच का धर्मिम रूप 'बात साहित्य' है। यह साहित्य किपुन परिप्रास में मिलता है। सामान्य रूप में इसे कहानी का पर्याय कहा जा सकता है। पर इसकी टेकनीक बात मान अज्ञानी में निरागत भिन्न है। वे बातें मूल रूप से 'कहने के लिए' रची गई हैं। इनके रचनाकार का व्यापार लोक रस में पुन मिल गया है। इसीलिए इन्हें लोक साहित्य की परिधि में रखा जा सकता है। इनको कहने और 'सुनने की एक विशेष प्रवृत्ति' है। कदा कहने वाली बात कहता बसता है और सुनने वाला हु काय देता रहता है। इसमें बल्य और मोटा के बीच एक श्रमक सजीव सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो रस निररति में बड़ा सहायक होता है। वर्ण विपय की दृष्टि से ये बातें विविध प्रकार की हैं। इनमें प्रेम की रसीली है तो युद्ध की घात भी पीछछिक युग की प्रती-किष्ठा है तो इतिहास की वस्तुस्थिति भी पारिवारिक दुर्बलताओं पर तीव्र प्रहार है तो सामाजिक विषयवस्तुओं पर करारा व्यंग्य भी। मुख्य रूप से साव कमी १ कई प्रासंगिक कथाएँ चुड़ी रखी हैं, यही वही प्रासंगिक कथाओं से भी कुछ की वैकुण्ठियों की भाँति अन्य कथाएँ छिपी रहती हैं जो कीरे २ सुनती जाती हैं। इन बातों की पात्र सृष्टि अङ्ग-वेतन, कीट-पतंगों, मानव-वैव-मानव भादि सभी क्षेत्रों तक व्याप्य है। प्रतीकिक तत्त्व यहाँ तत्त्व ही कदा के

१—कुछ रसी का यह विषय है—

कामी कर्मणी। काछी, कोचरी।

कुपप कुत्तित।

काकर्मका काकतरी।

कुहादि कुसम्भित्ती

सापिली, पापिली

पुंदिणी, नरपिली

सावड़ी, मोवड़ी।

करी, पड़ी।—समाश्रु गार: सं० अवरकाव नाहटा पृ० १०६

साथ घाबड़ हो गये हैं। कबा का प्रारम्भ सामान्यतः बातावरण से होता है। यह बातावरण भौतिक भी हो सकता है और सांस्कृतिक भी। वर्णों की प्रतिक्रिया, मायागत प्रवाह संसारों की गलतीयता उरमा उत्प्रेक्षा और दृष्टान्तों की च कृता तथा च २ में पद्यबद्धता इन बात साहित्य की सामान्य विशेषताएँ हैं।

(४) अन्य रूप

धार्मिक ऐतिहासिक और स्वात्मक गद्य के विभिन्न वर्णों के परिचित भी राजस्थानी गद्य का प्रयोग वैयक्तिक व्यक्तित्व वैज्ञानिक मानवशास्त्र, व्याकरण आदि वर्णों के क्षेत्र में किया गया। इस प्रकार का साहित्य यही बहुत कम प्रचलन में आया है। मसला है हम और स्वतन्त्र मेयन के प्रयोग विशेष हुए भी नहीं। इन प्रौक्तिक गद्य (व्याकरण सम्बन्धी) प्रचलन ज्यादा मिले गए। सं० १०३६ में लिखित 'शान्तिधा' इसी प्रकार का व्याकरण ग्रंथ है। संस्कृत व्याकरण की भरन-मुचन राजस्थानी गद्य में समझाया गया है। कुतमकन कुत 'मृगबाबोध प्रौक्तिक, लक्षणम मूरि कुत प्रौक्तिक' तथा विनक कुत उक्ति संज्ञा' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

विमानेक और पत्र सम्बन्धी गद्य की क्षेत्र भी विशेष मूल्यवान है। ये विमानेक ऐतिहासिक स्मारक धार्मिक अनुष्ठान विशेष राजशाही आदि विभिन्न विषयों में सम्बन्ध रखते हैं। पद्यारम्भ साहित्य का महत्त्व नरकनीन लोक की और भाषा के विकास दोनों दृष्टियों से है। ये पत्र नदियों और जलधायी, जलधायी तथा धारकों एवं जन साधारण के सामान्य व्यवहारों में संबंधित हैं। प्रारम्भ में वर्णों का प्रचलन समाचार प्रेषण की दृष्टि से ही हुआ पर कालान्तर में यह साहित्यिक विधा का एक वर्ण भी बन गया। विभिन्न सामाजिक स्तर और वर्णों के अनुकूल वर्णों की विविध शैलियाँ भी बन गईं। साथ में अपने समाज को पत्र लिखा तो उनका वर्णों की कड़ी ही जगदीश और वति न

१—नीय भी बानी दीन जुड़ी बान लानी दीन मुय मुयानेर नरक घोरना की राजधान बई। बड़ी घोरना भारी भारी घोरना नीकी भीकी घोरना दुम्मा रा सागर जलर। जना जारी तर्जों जिना प्रवाण पउ बाह्यण रा प्रतरामक रा दरमण रा जलण्डार पविषादी जॉन। जीवण प्रवाण। जीवणी बड़ी। मानने री कीर। बईने तेज। बईनी बैन। होय जना री बाण। भेदिया रा बाणर। देवद री जगदीश—जनेक घोरना साबक राब की १०० की कंदर भी रा थी...तथा बिईथीकी कोइ दरज आबय द्यो—बारि पादि।

प्रपत्नी स्त्री को पत्र लिखा तो उसके रूप की लड़ी पिरो दी' ।

१६ बी धर्ती में संस्मरणारम्भ कब के भी बर्णन होत है। 'भिरनु-रहान्त' में वैष्णव सम्प्रदाय के प्रायः प्रवत क स्वामी जीबलुजी के ११२ जीवन प्रसंगों को सम्मिलित किया गया है। ये प्रसंग उनके प्रत्येकावली विषय यानि हैमछन्दी हाथ लिखित हैं। इन प्रसंगों में संस्मरणकार की ईमानदारी सचाई और सहज स्वभाविकता है। 'इन कुछ ही भिन्न जीवन-पलों से स्वामीजी ने जीवन उनकी कृतियों, उनकी साधना और उनके विचारों पर धीरे-धीरे प्रकाश पड़ता है। इसके हाथ प्रायः स्वामी पर कब एक कब दो नामने पाया है जो माया की दृष्टि से ही नहीं तत्कालीन जातिक और सामाजिक बेडना के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। बीबी और पाना के पारस्परिक सम्बन्ध का चितना शारीरिक रूप पर सरल विवेचन यहाँ देखने को मिलता है^१।

(ख) अमौलिक गण

समीलक रूप से लिखा गया जो यकस्त्रीय रूप में लिखा है इसके दो प्रकार हैं । (१) टीका और (२) अनुवाद । इसमें टीकात्मक रूप ही विपुल परिमाण में मिलता है ।

१—स्वस्त श्री सुम सुधाने—स्वस्त श्री योग सुय सुधाने सकल कला प्रवीण
 बौद्ध कला विमान । मन भावन सुख उदयवन । माधारी बीज । कवच
 टी टीज । धारणा टी चक्र । किरणों से भूमक—शेष पात्र ६ निम्न
 सुख स्नेह प्यासा री मनहार होमिया विसृष्टे अभावसी—बारे डीबां ए बदन
 करको स्नेही जानेबड़ी भुजा नहीं एत दिवस मन में बसाया छौं मारि ।

—सोम पत्रिका : वर्ष १३ अंक ३, पृ. ७३

२—कैह कद्वै पोबी ज्ञान एी नैजछी नहीं । पूढ देखी नही । पोबी पानां तो ज्ञान है । निरुधी धायातना करछी नहीं । जद स्वाभीन्धी बोल्या पोबी पानां मे नै ज्ञान कहो छो तो पोबी पानां फट गया तो कद्वै ज्ञान फट पयो । अथवा पोबी पानां तिहु यमा तो कई ज्ञान सिद्ध पया । पानां उड़ गया तो कई ज्ञान उड़ गयो । पानां बल गया तो कई ज्ञान बल गयो । पानां नीर मे गया तो कई ज्ञान मे नीर मे गया । पानां ती प्रकीर्ण है । अने ज्ञान भी है । अलख की साकार तो प्रीतबली १ वासते छै । पानां में निरन्ता स्यारो जगज्जुखों मे ज्ञान है । ते वातमा छै । आपरे कने छै । अने पानां अनेछ छै ।—पिक्क हण्डांतः संवहकर्ता श्रीमद जयानार्थ ५ ५४

(१) टीकात्मक गद्य

टीकात्मक कथ के निर्माण में जैन विद्वानों का योग सबसे अधिक रहा। जैनार्थों और जैन संत करने वाले को जैन साधारण तक पहुँचाना चाहते थे। उनके मूल धार्मिक या ब्राह्मण भाषा में ही लिखे हुए मिलते हैं। सामान्य वर्ग तक उन्हें लिखित सिद्धान्तों को पहुँचाने के लिए यह आवश्यक था कि प्रचलित जन भाषा में उनकी व्याख्या की जाय उनके दार्ष्टिक्य समझाये जाय। जैन स्वल्प यह टीकात्मक कथ हो चको से सामने आया। बालाचक्रोप और टट्टा। बालाचक्रोप एक विशेष प्रकार की टीका-टीसी है जिसमें मूल ग्रन्थ की व्याख्या ही नहीं की जाती बल्कि मूल सिद्धान्त का स्पष्ट करने के लिए विभिन्न कथाएँ भी कही जाती हैं। ये कथाएँ परम्परागत, काल्पनिक या लोक-कथाओं में से चुनी जाती हैं। इनका प्रश्न धार्मिक सिद्धान्त के अनुसार कर दिया जाता है। यह कथा प्रायः ही इस टीसी की मुख्य विशेषता है। इस टीका को बढ़ कर बालक जैना परक या संक्षिप्त बालाचक्र भी मूल सिद्धान्त को समझ सकें इसी लिए इसे 'बालाचक्रोप' कहा गया है। इस प्रकार की टीकाएँ सामान्यतः जैन-मठों, स्तान्ध, चरित एवं दार्शनिक ग्रन्थों पर मिली पढ़ी हैं। टीकात्मक कथ का सर्वप्रथम उदाहरण सं० १३२८ में लिखित 'महाराष्ट्र व्याख्यान' का मिलता है। इसकी टीसी कटिबद्ध टीका जैसी है। उसके अर्थों में बालाचक्रोप टीसी का धारम धार्मिक सम्प्रदाय सूरि से होता है। उन्होंने पञ्चावस्यक बालाचक्रोप में संस्कृत, ब्राह्मण के ग्रन्थों को लोकभाषा में समझाया है। इसे समीक्षा की व्याख्यात्मक टीसी रूप में भी देखा जा सकता है। सोम मुहूर सूरि के ज्ञानप्रसादा बालाचक्रोप (ब्राह्मण में) और दीपसारथ बालाचक्रोप (धर्मग्रन्थ) को रचना की। येक मुहूर में सबसे अधिक संख्या १० बालाचक्रोप लिखे। इनके बाद लगभग ११ बालाचक्रोप लिखने वाले हैं पारसबन्ध सूरि।

के शास्त्रावलीय जैन-ग्रन्थों पर ही नहीं कि यही प्रदीप ग्रन्थों पर भी जैन विद्वानों ने कतम बनाई है। पठोद्घात काव्य गुप्तीराजकृत केति विसम कर्मणो से वर पितृ मिथान, अद्वैतीति, कुण्डलीर, मधुवीरत्नम आदि जैन विद्वानों को मारवाड़ी भाषाओं की गीतार्थ मिलती है।

१—इनी करि महाविवाह करउउ जिनहलु लोकि जाणितु । कि बहुना, राक्षस
पुलि जाणितु । पामु जिनहलु कु इनी परि भावना भावद । उवा त्रिलि
नवरी केवनी भावित । राखारि के लोक बाण्डी पुष्टिउ—अपवन् जिनहलु
पुष्पबालु किवा अमिननु पुष्पबालु केवनी बहीद जिनहलु पुष्पबालु ।
लोक बहद—अपवन् अमिननु पाछाबित जिनहलु न पाछाबित ।

टीकालयक गद्य का ब्रूयक कर है टप्पा। टप्पा बालाबबोब से बहुत संक्षिप्त होता है। इसमें व्याख्यानक वीसी का प्रयोग नहीं किया जाता न प्रासंगिक कहाएँ ही बी जाती हैं। इसमें केवल मूल सत्य का सर्व ऊपर, नीचे या पार्श्व में दिया जाता है। सबैकदेव (बीबरण टप्पा), सोय-विमल सूरि (कल्पसूत्र टप्पा) विश्वविमान (मोमबालन टप्पा कल्पसूत्र टप्पा) आदि उल्लेखनीय टप्पाकार हूँ। पीठा पुराण आदि पर भी ऐसी-विशेष विभागों ने कई टीकाएँ लिखी।

प्रतीकिक गद्य साहित्य का ब्रूयक प्रकार है अनुवाद। यह अनुवाद संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश पारसी आदि भाषाओं के प्रयोग का राजस्थानी गद्य में किया गया। नैन विद्याओं के संस्कृत प्राकृत में मिले पद्य प्रयोगों पर वही के अनुवाद राजस्थानी में प्रस्तुत किए। सम्यक्विजय का विजय अठक संस्कृत से राजस्थानी में अनुवादित इसी प्रकार का एक है। वीरसिंह गद्य साहित्य की दृष्टि से पुण्ड्र वर्मसाहब माहुरस्य एक आदि के अनुवाद मिलते हैं। पद्मपुराण के ८ अनुवाद मिलते हैं, जिनमें तीन अनुवाद टी लक्ष्मीधर व्यास (सं० १७७७) श्री लक्ष्मण व्यास (सं० १८८९) और श्री श्रीरामदास रत्नाड़ी (सं० १६१३) के हैं। चौथे अनुवाद का लेखन समय सं० १६१४ है। और ४ अनुवादों के न तो लेखकों का पता पड़ता है न लेखन-समय का। वर्मसाहब विषयक दो अनुवाद मिलते हैं 'कर्म विपाक' और प्रतिष्ठाशुक्रमाहिका। माहुरस्य पद्यों में एकारसी माहुरस्य का अनुवाद मिलता है। वैज्ञानिक ज्ञानों में बीबर नामक क्योटिवाबाब ने संस्कृत 'संय पण्डितसार' का राजस्थानी में अनुवाद किया। वैद्यक और योगसाहब लम्बन्धी ग्रंथों के भी कई अनुवाद मिलते हैं। इन अनुवादों में बालिक दृष्टि की ही प्रधानता रही है।

एक एक इनके राजस्थानी गद्य के विषय विविध रूपों और टीसियों की बर्णना की है उनका सम्बन्ध एक (प्राकृतिक युग में) धृष्टता का रहा है। राजस्थान के म प्रयोगों के व्याख्यानहीन हुआ एक व्याख्यान की व्याख्या और बीबर नाम की व्याख्या हिन्दी बना दी गई। एतत्काल राजस्थानी भाषा का निम्न कोई स्थापक लेख नहीं रहा। स्वतंत्रता के बाद एक प्रादेशिक भाषाओं की संवैधानिक मान्यता भी गई तो राजस्थानी उस अधिकार के भी अधिकार कर दी गई और उसका सम्बन्ध हिन्दी के साथ ही बढ़ा दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता के बाद एक प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की तरह राजस्थानी साहित्य भी तीव्रता की विधाय और मौलिक मुख्य नहीं हुआ।

मैं तो बस से राजभाषा को अपदस्त कर जहाँ जोली साहित्य-क्षेत्र में प्रविष्ट हुई तब से हिन्दी साहित्य में नए और नए की कई विविध नई छैलियाँ विकसित हुईं। राजस्थानी साहित्य भी इनसे अप्रभावित नहीं रहा। परम्परागत राजस्थानी गद्य में प्राचीन गद्य की अपूर्वक शक्ति ऐलियाँ धाम अस्तित्व में नही है, पर हिन्दी गद्य में प्रचलित नाटक एकांकी, कहानी, उपमास रेखा-चित्र संस्मरण निबन्ध आदि के विभिन्न रूप नए वातावरण और नूतन मरव विष्णु को लेकर प्रचलित हुए हैं। इनका स्वर प्रब सात्म्य सुवीन प्रचलितमूलक और कश्चित न होकर जनताधिक सामाजिक चेतना से अनुपाणित और प्रचलितमूलक है। इन ऐलियों में कृतिकार के व्यक्तित्व का मोप नहीं, उसकी विविधताओं का किंचित उबार भी इष्टित होता है। भाषा में कश्चितता, सामाजिकता और सामुहिकता के स्थान पर सारम्य, सामिर्य नई प्रचलना, साहित्यिक शक्तिता और वैयक्तिक स्थान के संदर्भ होते हैं। पर कुल मितकर नई छैलियों में लिखित राजस्थानी गद्य साहित्य के नीम को निचोरी प्रची हुई है वह भीरे भीरे पक रही है, उसे नवीन अनुभूति, पढ़ी संवेदना और प्राक निष्ठ की पुप प्रवेणित है, प्रमी कसका रंग कीला पड़ेगा और मिश्रत की परल होमी।



राजस्थानी वात साहित्य :

एक पर्यालोचन

राजस्थानी कलात्मक कथ में वात साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह वात साहित्य ऐतिहासिक कथ की बातों से किंचित भिन्न है। इसमें कथा तत्त्व की प्रधानता है जबकि इसमें इतिहास तत्त्व की प्रमुखता। यह वात साहित्य सामान्यतः प्राचीन कथा साहित्य का पर्यायवाची है। राजस्थानी में कहानी को वात, बार्ता, प्रादि नामों से पुकारा जाता है। यों वात 'घण्ट संस्कृत बार्ता' से ही व्युत्पन्न प्रतीत होता है। इन बातों में राजस्थान का नाविक, राजनैतिक प्राबिक नैतिक, धार्मिक और सामाजिक जन-जीवन परने यथार्थ रूप में उद्घाटित हुआ है।

सामान्य परिचय

सृष्टि के साथ साथ कहानी की सृष्टि हुई। प्रादि मानव ने अपनी स्पष्ट धारणा, मधुर-रसु प्रभुसृष्टियों को स्फुट-अस्पुट स्वरों में व्यक्त किया। प्रारम्भ में यह प्रभुसृष्टि भीषी और सरल थी। इसमें कथा का पुट न था पर कहने और सुनने के कारण एक विचित्रता प्रभव थी। प्रख्यात के विकास के साथ-साथ इस कथन-प्रणाली में कई परिवर्तन आये। विचित्रता कम हुई। आपेक्षाने के प्राबिकार ने इसे पठन-वाङ्म की वस्तु बना दिया। संक्षेप में आपेक्षाने के प्राबिकार ने इस कहानी-साहित्य पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(१) कहानी में विचित्रकथीय पुष्ट की प्रधानता थी वह अब न रही। अब कहानी कथनीय से पठनीय बन गई।

(२) कहानी में श्रोता को प्रत्यक्ष रूप में प्रभावित और प्रारम्भ विमोह करने की भी क्षमता थी वह अब न रही। निविष्ट होकर मुग्ध हो जाने से वह बरोबर पाठक की वस्तु बन गई।

(३) कहानी में भाषा की जो सहजता और सरलता थी वेद-काल के अनुसार रूप परिवर्तित करने की जो क्षमता और सुविधा थी मज्जित होकर कथनत स्वाधिश प्राप्त करने के कारण वह वतिशीलता अब न रही।

(४) वरम्पय में प्राप्त जो कहानियाँ बुद्ध और प्रभुसृष्टी कथावाचकों द्वारा मन्वी-मन्वी पदों तक सुनाई जाती थी वे अब मुक्त होने से बच गई।